ज्ञान तत्व 224

(क) लेख–1,नीम हकीम खतरे जान

(ख).लेख–2 **भ्रष्टाचार तथा अपराध कार्यपालिका,न्यायपालिका,औरविधायिका, के बीच तालमेल के अभाव का परिणाम है,कारण नहीं।**

ग..प्रश्न– 1.श्री आशा राम शास्त्री, शास्त्री नगर,फतेहपुर,सीकर,राजस्थान–

घ प्रश्न–2 योगिन गुर्जर 476 साखर पेठ, शोलापुर महाराष्ट्र,

च प्रश्न–3.बागीश पाण्डेय बिल्थरा रोड बलियॉ उत्तर प्रदेश

नीम हकीम खतरे जान

श्रृष्टि कब बनी और कैसे बनी यह बताना भी कठिन है और मेरा विषय भी नही। किन्तु जब से मनुष्य पैदा हुआ उसके कुछ ही वर्षो के बाद सामाजिक ढांचा बन गया होगा ऐसा अनुमान है क्योकि सामाजिक संरचना के अभाव में न व्यवस्था हो सकती थी न न्याय । निश्चित रूप से धर्म और राज्य की उत्पत्ति से पूर्व समाज व्यवस्था अस्तित्व मे आई होगी। किन्तु मै इस विषय पर ज्यादा जोर नही दे रहा । मेरा तो मुख्य कथन है कि वर्तमान समय मे मुख्य रूप से चार समाज व्यवस्थाएं प्रचलित हैं (1) इसाई बहुल (2) इस्लामिक (3) भारतीय (4) साम्यवादी। इसाई बहुल व्यवस्था मे परिवार को व्यवस्था का अंग नही माना गया है। वहॉ व्यक्ति और समाज का सीधा संबंध है। इस्लामिक व्यवस्था मे व्यक्ति और परिवार है किन्तु समाज नही है। वहॉ समाज की जगह पर धर्म है। साम्यवाद मे व्यक्ति परिवार धर्म सब समाप्त होकर सिर्फ समाज ही है जिसका प्रतिनिधित्व राज्य करता है। भारतीय व्यवस्था मे व्यक्ति और समाज के बीच परिवार को व्यवस्था की एक इकाई स्वीकार किया गया है यद्यपि भारत मे भी ऐसे लोगों की संख्या बढते जा रही है जो समाज की जगह पर धर्म को व्यवस्था की मुख्य इकाई मानने लगें।

भारत मे प्राचीन समय से ही व्यक्ति, परिवार और समाज का स्वतंत्र अस्तित्व रहा। इस्लामिक गुलामी के समय समाज की जगह धर्म मुख्य बनना शुरू हुआ तथा अंग्रेजो की गुलामी का प्रभाव पडा तब परिवार व्यवस्था की जगह व्यक्ति और समाज की धारणा जोर पकडने लगी। किन्तु इन सबके बाद भी भारत मे व्यवस्था की जडे इतनी गहराई तक थी कि न समाज व्यवस्था समाप्त हुई न परिवार व्यवस्था। स्वतंत्रता के बाद के शासन काल में नेहरू अम्बेडकर ने समाज व्यवस्था को तोड़कर समाजवादी व्यवस्था लाने की जी तोड़ कोशिश की, और आंशिक रूप से सफल भी हुए किन्तु अन्ततोगत्वा परिवार व्यवस्था समाज व्यवस्था फिर से मजबूत होने लगी। उन्नीस सौ इक्यान्नवे के बाद अर्थ व्यवस्था ने समाजवाद का चोला उतार फेकना शुरू कर दिया। दूसरी ओर राजीव गांधी ने ग्राम सभाओ को संवैधानिक अधिकार देकर समाज व्यवस्था को फिर से खड़े होने का आधार प्रदान कर दिया। फिर भी अब तक परिवार व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता दिलाने वाले किसी महावीर की प्रतीक्षा ही है। अब तक परिवार व्यवस्था पर नये नये आक्रमण हो ही रहे है।

भारत इस समय ऐसे संक्रमण काल से गुजर रहा है जहॉ धर्म, समाज, राज्य, और परिवार शब्द और उनके अर्थ एक दूसरे के साथ गड्ड मड्ड हो गये हैं। साम्यवाद के पतन और समाजवाद का नशा उतरने के बाद इस एक समाजवाद शब्द से तो मुक्ति मिलनी शुरू हुई किन्तु अब अन्य शब्द समाज और परिवार व्यवस्था को लगातार परेशान करते रहते है। पश्चिम की किताबे पढ पढकर विद्वान बने लोग हमेशा ही हमारी भारतीय व्यवस्था पर चोट करते रहते है। आज तो भारत मे दो स्पष्ट गिरोह बन गये है। पहला उन लोगों का जो ऐसा मानते और प्रचारित करते है कि हमारी पुरानी समाज व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ है, अन्तिम है । उसमे किसी तरह के सुधार, सशोधन, तर्क वितर्क विचार मंथन की जरूरत नही । एक दूसरी शक्तिशाली विचार धारा भी भारत मे मजबूती से उभर गई है जो मानती है कि जो कुछ पुराना था वह सब अवैज्ञानिक दकियानूसी और त्याज्य है। उसमे किसी तरह के सुधार, सशोधन, तर्क वितर्क विचार मंथन की जरूरत नही। अब तो संपूर्ण समाज व्यवस्था को नया स्वरूप देना होगा। जबकि सच्चाई इन सबसे कोसो दूर है। न तो पुराना आंख मूँदकर अनुकरण करने योग्य है न ही पुराना आंख मूँदकर छोड़ देने योग्य।

पुराने लोग परिवार व्यवस्था को पुराने तरीके से जकड़े रखना चाहते है। वही पुरूष प्रधान व्यवस्था और परिवार का अपने बच्चों पर वैसा ही अनुशासन। मेरे बच्चे ने बिना परिवार की इच्छा के विवाह कैसे कर लिया? उसे कठोरतम दण्ड दिया जावे। ये लोग इस बात को भूल जाते हैं कि बहुत पुराने समय मे भी किसी व्यक्ति को सामाजिक बहिष्कार या परिवार से निकालने से आगे दण्डित करने का न परिवार को अधिकार था न समाज को। यहॉ तक कि राज्य भी अपराध छोडकर किसी अन्य मामले मे किसी व्यक्ति को दण्डित नही कर सकता था। मुस्लिम शासन काल में वैश्यावृति सरीखे मामलें मे भी हत्या तक के प्रचलन शुरू हुये। यह बात सर्वविदित है कि इस्लामिक मान्यतानुसार किसी व्यक्ति का कोई मूल अधिकार होता ही नही जबकि भारतीय समाज व्यवस्था मे प्रत्येक व्यक्ति के मूल अधिकार सुरक्षित होते है। समाज या परिवार किसी भी स्थिति मे व्यक्ति के मूल अधिकारो मे कटौती नही कर सकता।

दूसरी ओर भारत मे ऐसे लोग भी हैं जो न परिवार व्यवस्था को मानते है न समाज व्यवस्था को । उनका मानना है कि किसी बालिग बच्चे को बिना परिवार और समाज की सहमति के विवाह करने के असीम अधिकार हैं। न उन्हे परिवार रोक सकता है न समाज। यहॉ तक कि ये लोग ऐसे बालको का बहिष्कार भी करने को अपराध मानते हैं। इन्हे समाज मे प्रचलित अच्छी से अच्छी अवधारणा भी गलत दिखती है। इनका प्रचार तंत्र इतना मजबूत होता है कि भारत की प्रशासनिक इकाइयां इनके विचारों से प्रभावित हो जाती हैं। कभी कभी तो न्यायपालिका भी ऐसे ही लोगो की भाषा बोलने लगती है। ये लोग स्वयं को सामाजिक संस्था कहते है किन्तु इनमे से अधिकांश संस्थाओं को गुप्त रूप से विदेशी धन प्राप्त होता रहता है। ऐसी विचित्र स्थिति मे फंसकर समाज टूट रहा है । राजनेता तो समाज को गुलाम बनाकर रखने के लिये हर बात मे समाज को ही दोषी बताता रहता है किन्तु जब ऐसे तत्वो को न्यायपालिका तथा पश्चिमी ढंग की तथाकथित सामाजिक संस्थाओं का संबल मिल जाता है तब ये राजनेता हर बात मे समाज को गलत बताकर उसका मनोबल तोड़ना शुरू कर देते हैं।

सात आधारों पर समाज को तोडने का संगठित खेल तो लम्बे समय से चल रहा था किन्तु अब तो परिवार व्यवस्था को भी तोडने का प्रयास शुरू हो गया है। समाज को महिला और पुरूष के दो टुकडों मे बांटने की पूरी पूरी कोशिश की जा रही है। अभी अभी पंजाब महिला आयोग ने एक सुझाव दिया कि नव विवाहित कन्याओं को कुछ दिनो तक ससुराल मे इस प्रकार रहना चाहिये कि पारिवारिक सामंजस्य बढे। आयोग का सुझाव था कि लडकी के माता पिता को भी लडकी के ससुराल के आंतरिक मामलो मे विशेष स्थिति मे ही हस्तक्षेप करना चाहिये। मुझे आश्चर्य हुआ कि पंजाब महिला आयोग की आलोचना करने वालों की बाढ सी आ गई। बडे बडे अखबारो ने सम्पादकीय लिखा कि महिला आयोग का काम सिर्फ महिला सशक्तिकरण है न कि महिलाओ को ऐसी सलाह देना। महिला लेखको को तो इस सलाह के खिलाफ लिखना ही था। किसी अखबार मे एक भी लेख नही आया जो इस सलाह के पक्ष में हो। इसी तरह दो हजार ग्यारह की जनगणना सम्पन्न हुई। जनगणना अनेक मुद्दो पर हुई। जनगणना के अनुसार पूरे भारत मे कुल मिलाकर महिलाओ की संख्या दो हजार एक के मुकाबले बढी है। किन्तु जनगणना के अनुसार एक से छः वर्ष के बच्चों मे कन्याओं की संख्या मे दो हजार एक के मुकाबले करीब एक प्रतिशत

की कमी दर्ज हुई है। यह अनुपात भी हरियाणा जैसे राज्यों मे बढा है किन्तु काश्मीर मे यह गिरावट बहुत ज्यादा हुई है। काश्मीर की गिरावट ने आंकडों को प्रभावित

किया है। रिपोर्ट प्रकाशित होते ही सभी नेता, लेखक, साहित्यकार, सामाजिक संस्थाएँ एक जुट होकर इस तिल को ताड बनाने मे जुट गई जैसे कि बस अब तो तत्काल कोई प्रलय होने वाला है। पूरी जनगणना रिपोर्ट मे इन्हे और कुछ दिखा ही नही। ऐसा लगा कि यदि यह एक प्रतिशत की गिरावट नही आती तो इन बेचारे लेखको के पास और कुछ तो लिखने को था ही नही । मैने दिल्ली से प्रकाशित सम्मानित पाक्षिक ''प्रथम प्रवक्ता'' मे विद्वान लेखक ब्रजेश चंद्र जी त्रिपाठी का एक लेख ''लैंगिक असमानता का खतरा'' पढा। लेखक ने लेख मे लिखा है कि(1) इन आकडो से जो सबसे ज्यादा चिंताजनक पहलू उभरकर सामने आया , वह यह कि 0–6 वर्ष आयु के बच्चों की संख्या गिरकर वर्ष 2001 की जनगणना के 163.84 मिलियन से वर्ष 2011 की जनगणना मे 158.79 हो गई है। ;(2) वर्ष 2011 की जनगणना के प्राविधिक आंकडो के अनुसार 0–6 वर्ष आयु वर्ग के बीच मे लडकियों का लडको की तुलना मे लिंगानुपात कम हुआ है। यह इस तथ्य को प्रदर्शित करता है कि हम जिम्मेदार सभ्य समाज नही है।(3) उत्तर प्रदेश मे लिंगानुपात बढकर 2001 की जनगणना के 899/1000 से बढकर 916/1000 ही हुआ है जबकि राज्य आर्थिक प्रगति की दिशा पकड रहा है। (4) प्रसिद्ध विद्वान अमर्त्य सेन के अनुसार लिंगानुपात मे कमी आना आधुनिक भारत के सबसे बडे सामाजिक खतरो मे से एक है। (5)युनिसेफ की 2007 की एक रिर्पोट के अनुसार 5 वर्ष से कम आयु की 40 प्रतिशत लडकियों की भारत मे उपेक्षा या कुपोषण और अभाव के कारण मृत्यु हो जाती है।

लेख की शब्दावली से स्पष्ट होता है कि लेख लिखने वाले का उद्देश्य जानबूझकर तिल का ताड बनाना है। ऐसा लगता है जैसे किसी ने लेखक को यह कार्य जिम्मे दिया हो। पूरी दुनियॉ का लिगांनुपात दो हजार एक और ग्यारह की तुलना मे नौ सौ छयासी से घटकर नौ सौ चौरासी हुआ है जिसमें चीन का 944 से घटकर 926, इंडोनेशिया का 1004 से घटकर 988, हुआ है जबकि भारत का 933 से बढकर 940, पाकिस्तान का 938 से बढकर 943, बंगलादेश का 958 से बढकर 978 हुआ है। ऐसा भारत मे कौन सा गजब हो गया कि उसके लिये भारतीय समाज व्यवस्था पर इतने आक्षेप किये जाये। भारतीय समाज व्यवस्था मे कई कमजोरियॉ होने के बाद भी वह हजारो वर्षो से सफलता पूर्वक चल रही है। उसके स्थान पर आने की कोशिश कर रही राजनैतिक व्यवस्था तो साठ वर्ष मे ही सैकडो संशोधनों के बाद भी मरणासन्न ही दिख रही है। राजनैतिक व्यवस्था स्वयं को ठीक करने की जगह समाज व्यवस्था मे हस्तक्षेप करने के लिये हाथ पांव पटक रही है, जो गलत है। राजनैतिक व्यवस्था को मालूम है कि खतरनाक सीमा तक पहुॅच चुके लिंगानुपात के राज्य हरियाणा पंजाब राजस्थान स्वयं ही लिंगानुपात सुधारने लगे है । सरकार अब उस सुधार का श्रेंय लेने के लिये हाथ पांव पटक रही है जबकि लिंगानुपात एक सीमा से आगे कम हो ही नहीं सकता। बल्कि उसके बाद तो समाज मे स्वाभाविक रूप से लिंगानुपात सुधारने की होड़ मच जायगी।

मै तो विद्वान लेखक के पहले क्रमांक के विचार को पढकर कुछ समझा ही नहीं कि यदि सन दो हजार एक की तुलना मे अब छः वर्ष तक के बालक बालिकाओं की संख्या मे पचास लाख की कमी आई तो लेखक इस गिरावट से चिंतित क्यो हुआ? यह तो वास्तव मे हमारी एक बडी उपलब्धि है कि छः साल के बच्चो की संख्या घटनी शुरू हुई है। कही ऐसा तो नहीं कि हमारे विद्वान हर मामले मे समाज में भय पैदा करने के अभ्यस्त हो गये हैं। आबादी बढ़े तो चिन्ता और घटे तब भी चिन्ता । समझ मे नही आता। अमर्त्य सेन जी को लिंगानुपात में कमी आधुनिक भारत के बहुत खतरे के रूप मे दिख रहा है, भ्रष्टाचार आतंकवाद बढ़ते बलात्कारों से भी ज्यादा ।

युनिसेफ जैसी संस्थाएँ तो किसी न किसी रूप में ऐसी समाज तोड़क बातों को तिल का ताड़ बनाती ही रहती हैं। यूनिसेफ की रिपोर्ट का हवाला देकर कहा गया कि पांच वर्ष से कम आयु की चालीस प्रतिशत लडकियॉ उपेक्षा, कुपोषण और अभाव के कारण मर जाती है। विचारणीय प्रश्न यह है कि चालीस प्रतिशत लडकियॉ तो जन्म के बाद कुपोषण से मर गई, लाखों लडकियॉ गर्भ मे ही मार दी गईं, किसी तरह कुछ लडकियॉ बच गई तो दहेज हत्या हो गई । इतनी लडकियों महिलाओं की हत्या के बाद भी महिलाओं की संख्या दस वर्ष मे दो हजार एक की अपेक्षा बढी कैसे? या तो जनसंख्या के आकड़े गलत है अथवा आपके आंकड़े गलत हैं। यूनिसेफ ने जो रिपोर्ट प्रकाशित की, या तो वही गलत है अथवा आपके लिखने मे कही भूल है अथवा हम ही आपका आशय नही समझ पा रहे। आपने जो कुछ लिखा है वैसा लिखने वाले आप अकेले नही है। आज तो हर विद्वान लड़कियों की घटती संख्या पर लिखने के कम्पीटिशन मे लगा हुआ है। यदि आप सब विद्वानों का उद्देश्य सामाजिक समस्या के समाधान का मार्ग प्रशस्त करना होता तो हम आपके लिखे पर विचार भी करते किन्तु यदि आप का उद्देश्य तिल का ताड बनाकर सरकार को समाज के मामले मे दखल देकर गुलाम बनाने से है तो हम ऐसे जयचंदो का खुलकर विरोध करते है। जो सरकार बलात्कार और आतंकवाद नही रोक पा रही, जो सरकार आकंठ भ्रष्टाचार मे डूबी हुई है वह सरकार कन्या भ्रूण हत्या के लिये इतने नाटक कर रही है। इस नाटक मे उसका अवश्य ही स्वार्थ छिपा है। यह राजनैतिक व्यवस्था तो बलात्कार वृद्धि का दोष भी समाज पर ड़ाल रही है। जरा विचार करिये कि एक तरफ विवाह की उम्र बढ़ा दे, दूसरी तरफ वैश्यावृत्ति पर भी रोक लगा दे और तीसरी तरफ महिला तथा पूरूष की दूरी भी घटा दे तो बताइये कि बलात्कार नही बढ़ेगा तो क्या सदाचार बढेंगा? सरकार ने तो बलात्कार वृद्धि का सारा वातावरण तैयार कर दिया है। यह तो सामाजिक अनुशासन था कि अब तक बलात्कारों की बाढ़ नही आई। यदि सरकारो ने अपनी नीतियों में संशोधन करके महिला पूरूष संबंधो मे अनावश्यक हस्तक्षेप का खिलवाड बन्द नही किया तो भविष्य मे तो बलात्कारों की ऐसी बाढ़ आ सकती है कि किसी के रोके न रूके । आप मौलिक आवश्यकताओं को नियमित ही कर सकते है, बाधित नही। आप कितनो को फांसी देंगे?

अंत मे मै सरकार तथा उसके पक्षधर विद्वानो से निवेदन करता हूॅ कि वे समाज की कमजोरियों को बढा चढ़ाकर प्रचारित करके उसपर नये–नये कानून थोपने की आदत छोडे अन्यथा ज्ञान यज्ञ परिवार इस संबंध मे जनमत जागरण करेगा। मै अपने मित्रो से भी निवेदन करता हूॅ कि सामाजिक व्यवस्था मे आई कुरीतियों तथा कमजोरियों को स्वयं ठीक करें। सती प्रथा या छुआछूत या जन्मना जाति प्रथा या आनर किलिंग का समर्थन नही किया जा सकता । यदि हम ऐसी कुरीतियों का समर्थन करते है तो उसका लाभ उठाकर राजनेता समाज को दोषी बताने और दोषी बताकर नये नये कानून थोपने का प्रयास करेंगे और आप रोक नही पायेंगे। विश्वास मत कीजिये कि न्यायालय आपका है। आखिर न्यायपालिका भी तो उसी व्यवस्था की एक अंग है। आखिर न्यायाधीश भी तो वैसी ही पश्चिम की किताबें पढकर परीक्षा पास करते हैं। अतः हमे स्वयं सतर्क और जागरूक होना होगा।

हमारे सामाजिक प्रतिनिधि भी समाज शास्त्र से अनभिज्ञ है। उनकी नीयत तो ठीक है किन्तु वे भी राजनैतिक दुष्प्रचार से प्रभावित होकर समाज को ही गलत बताना शुरू कर देते है । वे बेचारे इतना भी नही समझते कि यदि समाज व्यवस्था मे कोई कमी है तो वह हमारा आंतरिक मामला है। हम उस कमी को दूर करेंगे। हम समाज मे विचार मंथन करेंगे किन्तु राजनेताओं को लाभ नही उठाने देंगे। हमारे सामाजिक प्रमुख समाज शास्त्र का कम ज्ञान होने से राजनीति के शिकार हो जाते है। हमे चाहिये कि वर्तमान स्थिति को संकट काल मानकर हम किसी व्यक्ति के पीछे चलने की आदत छोडे । अभी समाज मे ऐसे सामाजिक विद्वानो का अभाव है जिनके पीछे आंख बंद कर चला जा सके । चाहे रामदेव बाबा हो चाहे अन्ना हजारे या कोई और । हम ऐसे समाज प्रमुखो के विचारो की समीक्षा करने की आदत ड़ालें। ये अच्छे लोग समाज शास्त्र के विषय मे जानते कम है और मानते बहुत ज्यादा है। ये नीम हकीम समाज सुधारक धूर्त राजनीति से ठगे जायेगें और आप कुछ नही कर पायेंगे। सिर्फ डाक्टर की नीयत ही पर्याप्त नही है उसे बीमारी का पर्याप्त ज्ञान भी तो हो । यदि ऐसा ड़ाक्टर न मिले तो हम स्वयं ड़ाक्टर से संवाद करके उचित अनुचित का निर्णय करना शुरू करें। आशा है कि हम इस तरह समाज सशक्तिकरण मे सफल हो सकेंगे।

भ्रष्टाचार तथा अपराध कार्यपालिका,न्यायपालिका,और विधायिका, के बीच तालमेल के अभाव का परिणाम है,कारण नहीं।

प्रश्न– यदि विधायिका या कार्यपालिका अपना काम ठीक से न करे तब न्यायपालिका को हस्तक्षेप करना चाहिये या नहीं? अभी एक ओर तो गोदाम मे अनाज सड़ रहा है तो दूसरी ओर कुपोषण या भूख से कुछ लोग मर रहे है । विधायिका और कार्यपालिका नियंत्रण नही कर रहे । तब न्यायपालिका क्या चुप बैठी रहे?

उत्तर– भारत मे लोकतंत्र है । सबसे पहले तो यह तय करना होगा कि

(1) लोकतंत्र मे सर्वोच्च कौन है? विधायिका या न्यायपालिका?

(2) विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका की सीमाऍं क्या है?

(3) तीनो मे से यदि विधायिका या कार्यपालिका अपना काम ठीक से न करे तब उन पर न्यायपालिका का हस्तक्षेप कब संभव है, कब नही। हस्तक्षेप सीमित होगा या असीमित।यदि सीमित होगा तो उसकी सीमा क्या होगी?

(4) यदि न्यायपालिका अपना काम ठीक से न करे तब उससे स्पष्टीकरण कौन ले सकता है और कब?

लोकतंत्र मे सर्वोच्च जनता है। विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका जनता द्वारा बनाये गये संविधान के द्वारा घोषित सीमाओं के अंदर ही काम करने को बाध्य हैं। इन तीनो इकाइयो के अपने अपने दायित्व भी होते है और अपनी– अपनी सीमाऍं भी । न्यायपालिका स्वयं को सर्वोच्च मानने की भूल कर रही है। यदि विधायिका या कार्यपालिका अपना काम ठीक से न करें तो उनकी समीक्षा का काम न्यायपालिका का नहीं है। यदि विधायिका किसी अन्य इकाई के मामलों मे अपनी सीमा से आगे बढकर हस्तक्षेप करे तब तो न्यायपालिका समीक्षा कर सकती है किन्तु वह विधायिका मे सक्रियता की कमी की समीक्षा नही कर सकती क्योकि यह उसका अधिकार नहीं । कल्पना करिये कि न्यायपालिका अपना काम ठीक से न करे तब उसकी समीक्षा विधायिका कर सकती है या नही । किसी न्यायाधीश के कदाचरण की समीक्षा तो विधायिका कर सकती है किन्तु न्यायपालिका की निष्क्रियता की समीक्षा तो विधायिका नही कर सकती। इसी तरह लोकतंत्र की सीमाऍं बनी हुई हैं।

न्यायपालिका बार बार विधायिका से अनाज बांटने के लिये कह रही है। वह गरीबी रेखा को ठीक से परिभाषित करने की बात भी बार बार कह रही है। ऐसा आदेश या निर्देश न्यायपालिका द्वारा अपनी सीमाओं का अतिक्रमण है। कोई सरकार अपने बजट का कौन सा भाग भूख, कुपोषण, और शिक्षा पर खर्च करे और कौन सा सुरक्षा पर यह उसका अपना अधिकार है। सरकार की प्राथमिकताऍं न्यायालय तय नही कर सकता। यदि न्यायालय के आदेशानुसार सरकार अपने बजट को असंतुलित करके इधर उधर कर दे तब तो बजट भी न्यायालय को ही बनाना पडेगा? कल्पना करिये कि सरकार किसी स्थिति मे सारा पैसा रोककर सुरक्षा पर लगा दे और भूख से हजार पॉच सौ लोग मर जावे तो न्यायालय यह कैसे कह सकता है कि सुरक्षा का बजट कम करके भूख पर लगा दो । मैने अखबारो मे पढा है कि न्यायालय के अनुसार जीने का अधिकार मूल अधिकार है और भूख से मरना उसके मूल अधिकार का उल्लंघन है जिसकी समीक्षा और हस्तक्षेप न्यायालय कर सकता है। मेरे विचार मे न्यायपालिका ने मूल अधिकार की परिभाषा ही या तो समझी नही या जानबूझकर सबको भ्रमित कर रही है। जीना व्यक्ति का मूल अधिकार है जिसमें सरकार कोई बाधा नही डाल सकती । कोई व्यक्ति सरकार की जेल मे भूख से नहीं मर सकता किन्तु यदि कोई स्वतंत्र व्यक्ति भूख से मरे तो सरकार का दायित्व नही कि वह उसकी व्यवस्था करने को वाध्य हो। सरकार का कर्तव्य है कि कोई व्यक्ति भूख से न मरे। स्वैच्छिक कर्तव्य को दायित्व घोषित कर देना असंतुलन पैदा करता है। कुछ पश्चिम की किताबें पढ कर परिभाषाऍं बदल देना कोई अच्छी बात नहीं।

यदि भूख से मरने के मामले की समीक्षा न्यायालय कर सकता है तो समाज मे बढते आतंकवाद मे न्यायपालिका की निष्क्रियता की समीक्षा विधायिका कर सकती है या नही? आज भारत मे आतंकवाद लगातार बढ रहा है। क्या न्यायपालिका ने कभी इस संबंध मे अपनी समीक्षा की कि आतंकवाद मे वृद्धि को देखते हुए उसे अपनी जिम्मेदारी की समीक्षा करनी चाहिये। न्यायालय द्वारा आतंकी बार बार निर्दोष घोषित हो जावे तो विधायिका या कार्यपालिका न्यायपालिका की न समीक्षा कर सकती है न निर्देश दे सकती है । यदि विधायिका ऐसे किसी आतंकवादी को मार दे तो न्यायालय प्रश्न पर प्रश्न कर सकता है। मेरे विचार मे यह तो विल्कुल एक पक्षीय विभाजन है । यह विभाजन कैसे संभव है कि न्यायपालिका के पास सिर्फ अधिकार ही अधिकार हो दायित्व बिल्कुल न हो। ऐसे किसी अपराधी को जिसे मृत्युदण्ड मिलना चाहिये, उसे कोइ बिना न्यायालय मे दिये मार दे तो यह अपराध नही है, गैर कानूनी कार्य मात्र है । अब यदि कोई अपराध और गैर कानूनी का अंतर भी न समझे तो बताइये कि मै क्या करूॅ। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि हम अपराध और गैर कानूनी का फर्क खोजने के लिये भी पश्चिमी देशो की किताबों का सहारा तो लेते है किन्तु भारतीय ज्ञान का सहारा नही लेते।

सारे देश मे एक गलत धारणा फैलाई जा रही है कि कोई सरकारी अधिकारी यदि गलत करे तो उसे सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक कठोर दण्ड देना चाहिये । यह परिभाषा त्रुटि पूर्ण है। ऐसे मामलों मे उसकी नीयत देखना अधिक महत्वपूर्ण है । यदि किसी व्यक्ति ने अपने पद का दुरूपयोग करते हुए बुरी नीयत से कोई अपराध किया तो उसे सामान्य से अधिक दण्ड होना ही चाहिये किन्तु यदि किसी व्यक्ति ने जन हित मे अच्छी नीयत से कोई कानून तोडा तो उसे सामान्य से कम दण्ड मिलना ही उचित है। एक पुलिस अफसर किसी पैसे की लालच या किसी के साथ षडयंत्र करके किसी निर्दोष की हत्या कर दे और एक अफसर किसी अपराधी को पकड कर गोली मार दे तो दोनो अपराध एक समान कैसे हो सकते है? कुछ वर्ष पूर्व एक पुलिस अफसर ने स्वयं लूट पाट करते हुए दो लोगों को गोली मार दी। मेरी समझ मे उस अफसर को सामान्य से अधिक दण्ड होना चाहिये क्योकि उसने बुरी नीयत से वह कार्य किया। ऐसे निर्दोष मृत व्यापारी और

सेहराबुद्दीन राजकुमार आजाद इशरत जहॉ को एक ही तराजू पर रखा जा सकता है क्या? यदि दोनो घटनाऍं समान महत्व की है तो पहले यही तय करना होगा कि मेरा दिमाग खराब हो गया है कि आपका । मेरे विचार मे उस निर्दोष व्यापारी की हत्या करने वाले पुलिस अफसर को मृत्युदण्ड और अपराधियों को गैर कानुनी गोली मारने वालों को अधिकतम पांच वर्ष का दण्ड होना चाहिये, क्योकि एक ने अपराध किया है तो दूसरे ने गैर कानूनी। एक ने बुरी नीयत से गलत किया है तो दूसरे ने अच्छी नीयत से

इसी तरह व्यक्ति परिवार और समाज के बीच यदा कदा हो रहे अधिकारों के टकराव का मुद्दा है। सेक्स दो विपरीत लिंगियों के बीच आपसी सहमति का मुद्दा है। किन्तु विवाह व्यवस्था इस स्वतंत्रता को नियमित करती है बाधित नही । यदि कोई व्यक्ति ऐसे पारिवारिक या सामाजिक अनुशासन को तोडता है तो उक्त व्यक्ति पर परिवार या समाज को एक सीमा तक ही अनुशासन की छूट है । सीमा के बाहर ऐसा अनुशासन गैर कानूनी हो जाता है। और यदि ऐसा अनुशासन हत्या मे बदल जावे तो ऐसी हत्या अपराध मे बदल जाती है । पारिवारिक या सामाजिक अनुशासन मे सीमा से आगे जाकर हत्या अपराध है और दण्डनीय भी है किन्तु ऐसे अपराध डकैती, बलात्कार, मिलावट, अपहरण, जैसे उद्देश्यो से जुडा हो तो ऐसा अपराध पारिवारिक सामाजिक अनुशासन के उद्देश्य से किये जाने वाले अपराध की अपेक्षा कई गुना ज्यादा गंभीर हो जाता है क्योकि दोनो की नीयत मे आसमान जमीन का फर्क है। एक महिला पारिवारिक सामाजिक अनुशासन के डर से अपने नवजात की हत्या कर दे और दूसरी महिला किसी महिला के बच्चे का फिरौती के लिये अपहरण करके हत्या कर दे। फिरौती के लिये की गई हत्या कई गुना ज्यादा गंभीर अपराध है। भारत में अपराधियो द्वारा लगातार ऐसा प्रचार किया जा रहा है कि बलात्कार, फिरौती, आतंकवाद अपहरण आदि से जुडी हत्याऍं आनर किलिंग, भ्रूण हत्या, छुआछूत जैसी बुराइयों से जुडी हत्याओं की अपेक्षा

कम गंभीर है। ऐसा ही प्रचार सैकडो वर्ष पूर्व सती प्रथा को सामने करके राम मोहन राय ने शुरू किया। वही प्रचार बढते बढते यहॉ तक पहुॅच गया कि आज हर सामाजिक कार्यकर्ता चोरी डकैती आतंकवाद से जुडी हत्याओ को तो मजबूरी या सामान्य अपराध के साथ जोडकर देख रहा है तो भ्रूण हत्या, दहेज हत्या, आनर किलिंग जैसे अपराधो को गंभीर । विधायिका के लोग तो ऐसे प्रचार से प्रभावित है ही किन्तु न्यायपालिका से जुडे लोग भी आनर किलिंग जैसे खराब नीयत रहित अपराधो को आतंकवाद डकैती हत्या की अपेक्षा अधिक गंभीर बताकर फांसी की चर्चा करने लगें तो मुझे महसूस हुआ कि इस मुद्दे पर व्यापक बहस होनी चाहिये । क्योकि यदि न्यायपालिका भी ऐसा सोचने लग गई तो अपराधों की बाढ रोकनी बहुत कठिन हो जायगी। पिछले सौ सवा सौ वर्षो से लगातार अपराधो मे हो रही वृद्धि का एक कारण यह भी है कि हमने राज्य व्यवस्था को समाज व्यवस्था के विरूद्ध खडा कर लिया जबकि समाज और राज्य एक दूसरे के पूरक है। समाज व्यवस्था मे यदि कोई कमी है तो हम उसे दूर करेंगे और यदि जरूरी हुआ तो राज्य व्यवस्था भी उसमें शामिल होगी। किन्तु राज्य व्यवस्था समाज व्यवस्था के साथ टकराव न शुरू कर दे यह बहुत आवश्यक है। मेरे विचार मे हमारी न्यायपालिका कहीं न कहीं इस मामले मे कुछ अनावश्यक तेज गति दिखा रही है।

समाचार पत्रों मे छपा कि रामजन्म भूमि प्रकरण की सुनवाई मे यह प्रश्न उठा कि न्यायालय से किसी पक्ष ने जब अपना अधिकार मांगा ही नही था तो बांटा कैसे गया । मेरे विचार मे ऐसे मुद्दे पर किसी प्रकार की टिप्पणी करना ठीक नहीं । न्यायालय मे दो पक्ष यही तो मांगने गये थे कि उक्त भूमि उसी पक्ष को दी जाय । स्पष्ट है कि न्यायालय से भूमि का स्वामित्व मांगने वाले दो विपरीत पक्ष थे। मांगा गया तभी तो विवाद हुआ । न्यायालय को समझ मे आया कि दोनो पक्षो के तर्को मे दम है। न्यायालय ने आधा आधा या एक तिहाई कर दिया । मामला सुप्रीम कोर्ट में गया जो लम्बित है। किन्तु अभी से उस पर कोई विशेष टिप्पणी करना हमारी सीमाओं का उल्लंघन है। कल्पना करिये कि दो पडोसियों के मकानो के बीच मे दस फुट की सरकारी जमीन है जिस पर एक महुआ का पेंड है। एक मकान वाला पांच वर्ष से महुआ चुनता आ रहा है। छठे वर्ष मे दूसरा मकान वाला कहता है कि तुमने पांच वर्ष चुन लिया। अब पांच वर्ष मेरा हक है । जमीन सरकारी है। मामला न्यायालय मे जाता है। न्यायालय या तो किसी एक को देगा या दोनो को आधा आधा करेगा। मेरे विचार मे ऐसे मामलों मे अपनी लोकप्रियता बढाने के चक्कर मे अनावश्यक टिप्पणी करने से हम सबको बचना चाहिये।

अब समय आ गया है कि यह स्पष्ट होना चाहिये कि न्यायपालिका की अन्तिम सीमा क्या है तथा लोकतंत्र मे न्यायपालिका किसके प्रति जबाब देह है। न्यायपालिका को अपना दायित्व भी समझना होगा और उस दायित्व के लिये जबाब भी देना होगा। न्यायपालिका को अब तक जितनी छूट दी गई वह एक स्थिति थी जव विधायिका मनमाना करने लगी थी। अब वैसी विशेष स्थिति नही कि न्यायपालिका को वैसी छूट मिले । अब विधायिका बहुत फूक फूक कर कदम रख रही है। ऐसी स्थिति मे हमारा लोकतंत्र वैसी भूल नहीं कर सकता । अब न तो यह उचित है न ही संभव कि, कार्यपालिका और विधायिका की समीक्षा न्यायपालिका कर सकती है किन्तु न्यायपालिका की समीक्षा न विधायिका कर सकती है न कार्यपालिका । जो कुछ अब तक हुआ वह तो ठीक था किन्तु अब जो हो रहा है उसके परिणाम गलत दिशा मे जा रहे है । विधायिका तथा कार्यपालिका द्वारा भ्रष्टाचार नियंत्रण के प्रयत्नो की सफलता के पूर्व न्यायपालिका द्वारा श्रेय की छीना झपटी अभी तो अच्छा लग सकता है किन्तु भविष्य मे संकट पैदा करेगा। न्यायपालिका अपनी समीक्षा मे किसी अन्य का हस्तक्षेप स्वीकार करने को तैयार नही है तो उसे कार्यपालिका, विधायिका की समीक्षा मे शालीनता और संयम भी दिखाना चाहिये।

यदि विधायिका या कार्यपालिका का मनोबल जान बूझकर गिराया जा रहा है तो अब समाज समीक्षा करेगा। समाज पूछेगा कि न्यायपालिका कभी गलत नही कर सकती ऐसी भावना पैदा करना कितना उचित है? समाज पूछेगा कि भारत मे बढते आतंकवाद और चरित्र पतन के लिये हम किससे प्रश्न करें। न्यायपालिका ने तो स्वयं को प्रश्नो से ऊपर प्रमाणित कर लिया है। शेष दो से भी प्रश्नोत्तर न्यायपालिका ही कर रही है। हम न्यायपालिका द्वारा विधायिका कार्यपालिका को दी जाने वाली फटकार से ही खुश होते रहे या कुछ न्यायपालिका की भी समीक्षा करे? आज एक मौलिक प्रश्न हमारे समय खडा है जिसपर न्यायपालिका सहित विद्वानो के उत्तर की प्रतीक्षा है।

1.प्रश्न– श्री आशा राम शास्त्री, शास्त्री नगर,फतेहपुर,सीकर,राजस्थान

प्रश्न–ज्ञान तत्व (220) पढ़ा। युग परिवर्तन के सुधारवादी, उदार, निष्पक्ष, निर्भय, बिना लाग लपेट के, समाज में व्याप्त ग्यारह समस्याओ का उल्लेख, बेहद पसंद आये। आपने शोषण, अत्याचार, भ्रष्टाचार, चोरी–डकैती, लूट, बलात्कार, मिलावट कमतौल जालसाजी, धोखाधड़ी, हिंसा आतंक, चरित्र–पतन, श्रम–शोषण, साम्प्रदायिकता, जातीय कटुता, आर्थिक असमानता आदि ज्वलंत समस्याओं का दिग्दर्शन कराया है। मुझे आपके विचार बहुत पसंद आये। मैं आपका सहयोगी बनने का संकल्प दोहरा रहा हूँ। मैं एक बात के विरूद्ध हूँ। मेरे विचार मे श्रम के आधार पर आरक्षण के विपरीत S-C-ST का आरक्षण बरकरार बदस्तूर चालू रहे। भारत में जब तक जाति–पाति, भेदभाव छुआछूत ऊॅच–नीच रहेगा तब तक आरक्षण बरकरार रहेगा। आज अनुसूचित जाति वर्ग के लोगों को किस नजर से देखा जाता है यह हमारा मन व दिल जानता है, अभिव्यक्त करने की बात नहीं हैं। इसके अलावा मैं आपकी सभी बातों का समर्थन करूंगा। मानसिक छुआछूत दूर हो। जिस पर बीतती है वही जानता है।

श्रीमान् जी ! मैं आपका ग्राहक बनूंगा, सहयोग करूंगा तन–मन–धन सर्व प्रकारेण कार्य को गति दूंगा। इसके शुल्क को कहीं नही दर्शाया गया है। कृपया लौटती डाक से अवगत कराइएगा।

उत्तर–ज्ञान तत्व भारत की एकमात्र ऐसी पत्रिका है जो विचार प्रचार से पूरी तरह दूर रहकर विचार मंथन तक सीमित है। आरक्षण विषय पर भी हम लगातार विचार मथंन करते रहे हैं।यही कारण है कि हमारे साथ बड़ी मात्रा में आरक्षण समर्थक भी जुड़े हुए हैं और आरक्षण विरोधी भी।

मैं बचपन से ही जाति प्रथा, जातिवाद तथा छुआछूत का विरोधी रहा। बचपन में ही अग्रवाल परिवार का होते हुए भी जातिवाद विरोधी मेरे विचार, उच्च वर्ग को पसंद नहीं थें। परिणाम स्वरूप हमारे शहर के ब्राम्हणों ने मुझे हिन्दू धर्म से बाहर कर दिया। मै इसाइयों के निकट गया और जब इसाई धर्म ग्रहण करने ही वाला था तो आर्यसमाज ने मुझे रोक दिया और मैं इसाई न होकर आर्य समाजी बन गया। मेरी उम्र उस समय सोलह वर्ष की थी। मैं जातिवाद का कट्टर आलोचक था। मैं अपने नाम के साथ अग्रवाल न लिखकर आर्य लिखता था।

मैंने अच्छी तरह समझ लिया था कि धूर्त सवर्णो को सस्ते और स्थायी श्रमजीवियों की निरंतर आवश्यकता थी। इसलिये उन्होने उन सब श्रमजीवियों की एक जाति बनाकर उन्हें शूद्र नाम दे दिया। धूर्त सवर्णो ने साफ सफाई जैसे कार्यो के लिये भी एक पृथक जाति बना दी और उन्हें अछूत मान लिया। प्रारंभ में तो यह व्यवस्था थी किन्तु जब यह व्यवस्था कर्म से हटकर जन्म पर आधारित हो गई तब यह जाति व्यवस्था अन्याय और शोषण का आधार बन गई। मेरा मन बचपन से ही ऐसी शोषण आधारित व्यवस्था को तत्काल समाप्त करने में सक्रिय रहा।

कुछ ही वर्षो के बाद मैने अनुभव किया कि धूर्त सवर्णो ने मुठ्ठी भर अवर्णो को अपने लाभ का भागीदार बनाकर जाति प्रथा को मजबूत बनाना शुरू कर दिया है। हम सवर्णो को अवर्णो के लिये जाति सूचक शब्दों के प्रयोग के लिये फटकारते थे। हम जातीय संगठन नही बनाने देते थे। किन्तु कुछ ही वर्षो में हम देखने लगे कि अवर्णो का एक वर्ग जातिवाद को मजबूत करने का पक्ष लेने लगा क्योंकि उन मुट्ठी भर अवर्णो को सवर्णो के समान लाभ प्राप्त होने लगा और इस लाभ ने उनका सम्मान भी बढ़ा दिया। हमारा जातिवाद खत्म करने का सपना चूर–चूर हो गया। मैने भी अपना नाम आर्य से बदलकर अग्रवाल कर दिया।

इस तरह हजारों वर्षो से धूर्त सवर्णो ने अवर्णो का सामाजिक शोषण किया यह निर्विवाद हैं। इस सम्बन्ध में मुझे व्यक्तिगत रूप से भी पूरा अनुभव है किन्तु उक्त समस्या के समाधान में आरक्षण कितना सहायक है कितना बाधक यह चर्चा आवश्यक है। हजारों वर्षो से चल रहे सामाजिक आरक्षण ने ही

समाज व्यवस्था की इतनी दुर्गति की है। इसका मुझे पूरा अनुभव और विश्वास है। इस सामाजिक आरक्षण की कुप्रथा के परिणाम स्वरूप सवर्णो की स्वाभाविक पहचान बुद्धिजीवी के रूप में स्थापित हुई और शूद्रों या अवर्णो की मजबूरी श्रमजीवी के रूप में बदल गई। बुद्धिजीवी आवश्यकतानुसार श्रम खरीदते थे और अवर्ण अथवा शूद्र अपना श्रम बेचते थे। सवर्ण अपनी इच्छानुसार श्रम का मूल्य देते थे। शूद्र और अवर्ण अपना पारंपरिक कार्य छोड़कर बुद्धिजीवी बनने के लिये प्रतिबंधित थे।

स्वतंत्रता के बाद सामाजिक आरक्षण के विरूद्ध संवैधानिक आरक्षण आया। इस आरक्षण ने श्रम और बुद्धि के बीच की सीमा रेखा भी तोड़ दी और प्रतिबंध भी हटा लिये। इसने शूद्रों और अवर्णो को सवर्णो के समान लाभ देने शुरू किये। मै इस बात से सहमत हूँ कि संवैधानिक आरक्षण यदि नहीं होता तो साठ वर्ष बाद भी न कोई शूद्र उच्च पदों पर जा पाता न ही कोई अवर्ण किन्तु मैं यह बात भी दावे के साथ कह सकता हूं कि आरक्षण के माध्यम से जिन दस प्रतिशत शोषित बुद्धिजीवियों को लाभ मिला है उन्हे या उनके वंशजो को ही भविष्य में भी उक्त लाभ मिलता रहेगा। शेष नब्बे प्रतिशत शूद्र और अवर्ण तो नई व्यवस्था के लाभ से अछूते ही रह जायेगें। यदि हजारों वर्ष भी बीत जावे तब भी ये बेचारे तो उसी तरह रहेगें जैसा आज जी रहे हैं क्योंकि आरक्षण के लाभ से बुद्धिजीवी बने अवर्णो शूद्रो के वंशज भविष्य मे भी बुद्धिजीवी बने रहेंगे और नब्बे प्रतिशत अवर्ण शूद्र श्रमजीवियों के बच्चे कभी उनसे प्रतिस्पर्धा नही कर पायेंगे और उसी तरह बुद्धिजीवियों के पास अपना श्रम बेचने के लिये मजबूर होगें। मैने तो देखा है कि पचास वर्ष पूर्व भी जब अवर्ण सवर्ण का भेद चरम पर था तब भी किसी बुद्धिजीवी प्रसिद्ध अवर्ण नेता के साथ सवर्ण महिला पत्नी के रूप मे रहने को तैयार हो गई थी। आज की तो बात ही और है। मेरे विचार से तो यह श्रमजीवियों तथा अवर्णो के साथ धोखा हुआ कि उनके कुछ मुट्ठी भर लोगों को आरक्षण का लाभ देकर शेष को भावनात्मक रूप से संतुष्ट करने का षड़यंत्र किया जावे।क्या यह अच्छा नहीं होता कि अछूतों अवर्णो तथा शूद्रों के चार–पांच प्रतिशत बुद्धिजीवियों को सवर्णो के समकक्ष लाने की अपेक्षा श्रम मूल्य को इस प्रकार बढ़ने दिया जाता कि उसका लाभ सभी शूद्रों अवर्णो को समान रूप से मिलता। स्वाभाविक है कि ऐसी हालत मे न कोई अवर्ण या शूद्र आसानी से नेता बन पायगा न ही कलेक्टर। अन्य सुविधा के कार्य भी सवर्ण ही झपट लेंगे। किन्तु साथ में यह भी स्वाभाविक है कि श्रम मूल्य में असाधारण वृद्धि होने से श्रम बेचने वाले और श्रम खरीदने वालों के बीच आर्थिक असमानता कम हो जायगी। यदि नमूने के रूप में दो चार प्रतिशत अवर्णो के उत्थान के स्थान पर पूरे शोषित वर्ग का समान उत्थान हो तो यह अधिक न्याय संगत होगा। मेरे विचार में श्रम मूल्य वृद्धि आरक्षण का एक अच्छा विकल्प है।

मैं आरक्षण को समाप्त करने की बात नहीं कर रहा क्योंकि यदि श्रम मूल्य में वृद्धि न हो और आरक्षण समाप्त हो जाय तो जो दो चार प्रतिशत लाभ उठा पा रहे है वे भी वचिंत हो जावेंगे। किन्तु मैं पुराने आरक्षण के समाधान के रूप में नयी आरक्षण व्यवस्था को नहीं मानता हूं। नब्बे प्रतिशत श्रम जीवियों को धोखा देकर दस प्रतिशत बुद्धिजीवी लोग उसका लाभ लेते रहे यह व्यवस्था नहीं चलनी चाहिये।

आज सम्पूर्ण भारत का सम्पूर्ण बुद्धिजीवी या पूंजीपति वर्ग डीजल, पेट्रोल, बिजली, की मूल्य वृद्धि के खिलाफ हैं। इस खिलाफत में हमारे वे भाई भी शामिल हैं जो आरक्षित कोटे से बुद्धिजीवी बने हैं। जो भी व्यक्ति श्रम खरीदता है वह डीजल पेट्रोल बिजली की मूल्य वृद्धि किसी भी तरह नहीं होने देना चाहता क्योंकि ऐसा होते ही श्रम की मांग बढ़ जायगी और उसका मूल्य भी बढ़ जायगा। आप खोजकर भी ऐसा कोई व्यक्ति नहीं निकाल सकते जो श्रम खरीदने की क्षमता तो रखता हो किन्तु डीजल पेट्रोल बिजली केरोसिन कोयला की मूल्य वृद्धि का भी विरोधी न हो। वह कृषि उपज वन उपज साइकिल दाल तेल पर टैक्स वृद्धि सहन कर लेगा किन्तु कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि के खिलाफ जान दे देगा क्योंकि कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि श्रम की मांग और मूल्य बढ़ा देगी जो उसके लिये घातक होगी। हमारे आरक्षण का लाभ लेकर श्रमजीवी से बुद्धिजीवी बने भाई भी जब उक्त षड़यंत्र में शामिल हो जाते है तो बेचारा श्रमजीवी क्या करे ? सभी आदिवासी हरिजन सांसद विधायक एक स्वर से श्रम शोषण की इस आवाज में शामिल रहते हैं। इससे तो अच्छा यही होता कि वे वहां बैठकर हमारा प्रतिनिधित्व ही नहीं करते।

इसलिये मैं इस मत का हूं कि श्रम की मांग और श्रम मूल्य का बढ़ना ही आरक्षण का सर्वश्रेष्ठ विकल्प है। वर्तमान आरक्षण व्यवस्था के दूरगामी घातक परिणाम निश्चित हैं। इस संबंध में व्यापक विचार मंथन होना चाहिये। ध्यान रहे कि मैं वर्तमान आरक्षण व्यवस्था का विरोधी नहीं। मैं तो चाहता हूं कि आरक्षण के विकल्प के रूप में श्रम का मूल्य और मांग इस तरह बढें कि श्रम बुद्धि और धन के बीच लगातार बढ रही दूरी कम हो जावे।मै श्रम मूल्य बढाने के कभी पक्ष मे नही रहा क्योकि श्रम मूल्य को बढाना श्रम के विरूद्ध बुद्धिजीवियो का षणयंत्र है। श्रम मूल्य बढाना और कृत्रिम उर्जा का मूल्य कम बढाना श्रम की मांग को कम करता है। आज गांवो मे भी मशीनो का प्रचलन बढते जाने का यही कारण है। मै तो सिर्फ यही चाहता हूँ कि श्रम को बढने से रोकने की जालसाजी न हो।

ज्ञान तत्व का शुल्क स्वैच्छिक है। वैसे हमारा लागत खर्च करीब 100 रूपया प्रति वर्ष हो जाता है । कुछ पाठक 100 रूपये वार्षिक या पॉच सौ रूपया आजीवन का भेज भी देते है। कुछ पाठक 1000 रूपया वार्षिक तथा कुछ इससे भी आगे बढकर हजार रूपया मासिक भी दान देते रहते है। इसलिये हम इस ज्ञान तत्व के शुल्क की कोई विशेष चिन्ता नही करतें। शुल्क से भी ज्यादा हमे यह सहयोग चाहिये कि योग्य पाठको के नाम बडी संख्या मे हमे प्राप्त होते रहे । जिससे हम उन्हे कम से कम एक वर्ष तक ज्ञान तत्व भेज कर उन्हे विचार मंथन मे जोड सके ।

2.योगिन गुर्जर 476 साखर पेठ, शोलापुर महाराष्ट्र,

सुझाव– (1) राइट टू रिकॉल का मै भी पक्षधर हूँ। यह मांग आगे बढाने से पहले कुछ बातें प्राथमिक तौर पर करना जरूरी हैं। जैसे लोकतांत्रिक मार्ग से मतदान 100/– होने के लिये कदम उठाने जरूरी हैं। विधायको को चुनकर आने के लिये कुल मतदाताओ के 50/ फीसदी से ज्यादा मत मिले तब ही उसे विजयी घोषित किया जाए, अन्यथा दुबारा मतदान हो। इससे शुरूआत मे तकलीफे बढेगी, मगर आगे फायदा ही होगा, मतदान पत्रिका मे इनमे से कोई नही, यह एक ऑप्शन होना चाहिये ऐसा कई लोगो का मत है। "इनमे से कोई नही" को ही ज्यादा मत मिल जाय तो अगला कदम क्या होगा? फिलहाल मै इस मुद्दे के पक्ष मे नही हूँ। पहले सभी मतदाताओ को मतदान करने की आदत लगे उसके बाद ही इस मुद्दे पर विचार करना उचित होगा। मैने ज्ञान तत्व मे पढ़ा था जिसके अनुसार मतदान न करने का भी एक ऑप्सन माना गया है। यदि सचमुच विचार पूर्वक है तो मुझे मंजुर हैं परन्तु बहुतांश मध्यवर्ग तथा उच्चवर्ग मतदान का दिन एक दिन छुट्टी के तौर पर ही मानता है इसमे विचार पूर्वक निर्णय नही होता है।

' राइट टू रिकाल' के मतदान मे उन्ही लोगों को मतदान का अधिकार हो जिनके मतदान पर विधायक चुने गये थे वरना चुनने के लिये निम्न वर्ग का मतदान और वापस बुलाने के लिये जिन्होने चुनाव के वक्त मतदान नही किया ऐसे ही लोग आगे आएगें । कुल मिलाकर जिन्होने चुनने की प्रक्रिया मे हिस्सा नही लिया उन्हे रिकाल की प्रक्रिया मे भी भागीदार होने का अधिकार नही होना चाहिये। 'राइट टू रिकाल' की प्रक्रिया बडी जटिल होगी। रिकाल किया गया उम्मीदवार दोबारा चुनाव प्रक्रिया द्वारा चुनकर आया तो क्या होगा?

(2) श्रम को पैसा और प्रतिष्ठा मिले ऐसा हर नेता कहता है पर करता कुछ नही । आप सतत संपूर्ण ढंग से हर बार ऐसी जागृति पैदा कर रहे है। आपको बहुत बधाई। किसान को फसल के दाम देने के लिये हम तैयार नही । पांच रूपये की टूथपेस्ट 30 रूपयें मे खरीद लाते है। इस देश मे टूथपेस्ट ना ही

उत्पादित की जाय और ना ही बेची जाए तो 125 करोड भारतीयों के मुँह के स्वास्थ मे कोई बिगाड नही आयेगा। बडे होटल, बडे लोगों की शादियॉ, पार्टिया, इनमे रोज कई टन अन्न का (बढ़िया ढंग से बनाया खाना) जो नुकसान होता है वो बर्दाश्त के बाहर है । ऐसे कार्यक्रमो मे हाजिरी लगाना ही मैने छोड दिया है। जानबूझ कर थाली में खाना छोडना एक स्टेट्स सिंबल बन रहा हैं। ये सब श्रम को प्रतिष्ठा न होने की वजह से ही है। पाश्चात्य देशो मे अन्न का नुकसान कोई नही करता। हम उनसे अच्छी बाते सीखें।

(3) लोकपाल विधेयक लागू होने के बाद भी भ्रष्टाचार पर कुछ हद तक ही नियंत्रण हो सकेग । बहुत बडा फर्क पडने वाला नही, फिर भी नेता लोग क्यो बौखलाऍ है? भ्रष्टाचारियों के खिलाफ कडाई से कारवाई नही हो रही है।

(4) सांसद हमले का अफजल गुरू मुंबई हमले का अजमल कसाब इन्हे हम सजा दिलवाने मे हिचक रहे है और पाकिस्तान मे बैठा दाउद को पकडने की बात कर रहे है। जो आतंकवादी हाथ मे है उनको तो निपटा लो दाउद को पकडने के लिये हम अमेरिका की भीख मांग रहे है।

(5) संविधान मे बदलाव जरूरी है और वो भी तत्काल मगर यह कैसे संभव होगा? मध्यवर्गीय जो इस देश मे बहुसंख्यक है उन्होने तो गुलामी स्वीकार कर ली है। वे तो सिर्फ लाभ उठाने मे ही व्यस्त है।

(6) सत्ता का केंद्रिकरण और भ्रष्टाचार का विकेंद्रिकरण समाज के लिये घातक है ।

(7) राहुल गांधी कहते है अच्छे नौजवान राजनीति मे आने चाहिये मगर खुद किसी अच्छे नौजवान के लिये अपना पद नही खाली करेंगे।

समीक्षा – आपका हर सुझाव गंभीर है। इसलिये प्रत्येक सुझाव पर विस्तृत चर्चा करनी चाहिये। आपके सुझावो पर चर्चा के पूर्व हमे दो परिस्थितियों का ध्यान रखना होगा ।

(1) लोक स्वराज्य लागू होने के बाद की स्थितियों मे हमे क्या क्या करना होगा और

(2) जब तक लोक स्वराज्य नही आता है तथा संसदीय लोकतंत्र ही रहता है तब तक के लिये हमारे क्या सुझाव है।

जब तक हम दोनो स्थितियों की अलग अलग चर्चा नही करेंगें तब तक ऐसे प्रश्न तो उठते ही रहेंगे । राइट टू रिकाल, कोई नही' का आप्शन, मतदान करना या नही करना , जैसे सभी प्रश्न वर्तमान संसदीय प्रजातंत्र प्रणाली मे ही गंभीर महत्व रखते है, लोक स्वराज्य प्रणाली मे नहीं । आज उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री की कुर्सी का मूल्य पांच सौ करोड है तो उस पर बैठने वाले की नियुक्ति के पूर्व गंभीर छानबीन हमारी मजबूरी है। यदि उस कुर्सी की कीमत ही घटकर पचास लाख हो जावे तो छानबीन की प्रक्रिया भी उतनी गंभीर नही होगी। यदि वह मूल्य और घटकर दस लाख हो जावे तो छानबीन और कम हो जावेगी। लोक स्वराज्य प्रणाली मे चुनाव प्रणाली का महत्व बहुत कम हो जायगा। किन्तु वर्तमान संसदीय प्रजातंत्र मे चुनाव का बहुत महत्व है।

संसदीय लोकतंत्र भी दो प्रकार का है– (1) आदर्श (2) विकृत । आदर्श लोकतंत्र मे सुराज्य होता है और विकृत लोकतंत्र मे अव्यवस्था । आदर्श लोकतंत्र मे अच्छे लोग शासन मे रहते है तथा विकृत लोकतंत्र मे बुरे । हमारा सारा विचार विमर्ष और नीतियॉ परिस्थिति अनुसार तय करनी पडती है। नीति निश्चित नही हो सकती । कल्पना करिये कि हमारे पडोस मे आग लग गई है जो हमारे घर को भी चपेट मे ले सकती है। हम उसके घर की आग बुझावे या अपने घर को उस घर से अलग थलग काटकर सुरक्षित करे यह परिस्थिति पर निर्भर करता है ।यदि आग बुझना संभव है तो हम अपनी सारी ताकत आग बुझाने मे लगा दे। यदि निश्चित हो जाय कि आग बुझ नही सकती तो आग बुझाना छोडकर अपने घर को अलग थलग

करके सुरक्षित करें। मतदान के लिये भी परिस्थिति अनुसार तय करना होगा। मतदान के दो अर्थ हैं (1) अच्छे व्यक्ति अच्छे दल का चयन, (2) संसदीय लोकतंत्र पर सहमति । मैने लिखा है कि यदि अच्छा व्यक्ति अच्छा दल दिखे और वह व्यक्ति या दल दौड मे कम से कम दूसरे नम्बर पर हो तब तो आप प्रयास करिये अन्यथा यदि आपको तत्काल कुछ लाभ मिलता हो तब मतदान करिये और यदि दोनो ही स्थितियॉ न हो तो बिना मतलब के इस विकृत लोकतंत्र पर मुहर लगाने की मूर्खता मत करिये। बताइये कि मेरे सुझाव मे क्या गलत है?

राइट टू रिकाल का लोकस्वराज्य मे ज्यादा महत्व नही है। इसका ज्यादा महत्व तो विकृत लोकतंत्र मे ही है जैसा अभी है। अतः आपके सभी सुझावों पर लोक स्वराज्य संघर्ष के समय चर्चा अनावश्यक है। यदि वर्तमान स्थिति बनी रहती है तब तो हम राइट टू रिकाल का भी तरीका खोजे तथा कोई नही के सुझाव पर भी। मतदान शत प्रतिशत हो या बहिष्कार यह भी परिस्थितियों पर निर्भर करेंगा। वैसे पिछले साठ वर्षो से तो मतदान बहिष्कार ही उचित दिखता था किन्तु यूपीएटू मे मनमोहन सिंह के आने के बाद संसदीय लोकतंत्र मे कुछ सुधार की उम्मीद बनने लगी है। एक बार तो ऐसा लगने लगा था कि पूरा मीडिया, भ्रष्ट नेता, तथा पूंजीपति मनमोहन सिंह को उखाड ही देंगे। किन्तु अब स्थितियॉ कुछ संभली है। यदि थोडे दिन और ठीक रहा और कोई अप्रत्याशित घटना नही हुई तो पेशेवर राजनेता मीडियॉ पूंजीपति निराश होकर नई राह चुनने को मजबूर हो जायगे।

इसलिये मै सबसे ज्यादा जोर तो समाज सशक्तिकरण पर दे रहा हूँ। समाज सशक्तिकरण योजना से लोकस्वराज्य की भूख पैदा होगी और धीरे धीरे आवाज मजबूत होगी। दूरगामी योजना है। दूसरा कदम है आदर्श लोकतंत्र जिसमे मनमोहन सिंह नीतिश कुमार नरेन्द्र मोदी जैसों की टीम को प्रोत्साहन तथा अजीत जोगी लालू, मुलायम, मायावती को निरूत्साहित करना है। यदि कही चुनाव के समय आपकी मजबूरी हो कि मायावती मुलायम या जयललिता करूणानिधि मे से ही एक को चुनना है तब यदि तत्काल कुछ लाभ मिले तो ठीक अन्यथा मत जाइये विकृत लोकतंत्र पर मुहर लगाने।

टूथपेस्ट या अनाज की बर्बादी रोकने की हम तब पहल करें जब वैसी आदर्श स्थिति हो । युद्ध काल मे संचित अनाज यदि अपनी सेना के काम आने वाला हो तब तो हम उसका दाना दाना सुरक्षित करेंगे। और यदि युद्ध मे हम वह गोदाम छोडकर इस तरह पीछे हट रहे है कि वह अन्न शत्रु पक्ष को काम आयगा तो वह गोदाम या तो हम जला देगें या कम से कम उसकी सुरक्षा से तो दूर ही रहेंगें। श्रम शोषण के उद्देश्य से बुद्धिजीवियों तथा पूंजीपतियों ने हाथ मिलाकर आर्थिक नीतियॉ बनानी जारी रखी है। सरकार अनाज खरीदने का काम अनावश्यक ले रखी है । लोकस्वराज्य प्रणाली मे यह काम सरकार का नही । अनावश्यक काम हाथ मे लेकर अब अनाज खरीदना फिर उसे बचाना और फिर उसे बांटना । बरसात के कारण हजारों क्विन्टल गेहू सड रहा है। सारे भ्रष्ट लोग भी इस सडने के खिलाफ चिल्ला रहे है और मीडिया भी । न्यायालय भी पूरा जोर लगाये हुए है । कोई यह क्यो नही कहता कि यदि सुरक्षा की व्यवस्था नही है तो मत खरीदो। सरकार हजारों क्विंटल अनाज सडा दे, सरकार सारा धन भ्रष्टाचार मे झोक दे और हम टूथपेस्ट और अपने भोजन मे बचत करते रहे। मै इस पक्ष मे नही।

राहुल गांधी का उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना है और सत्ता मे आने के लिये समाज को युवा वृद्ध मे बांटना आवश्यक दिखा तो उन्होने वह राह पकडी है। मै ऐसे विभाजन के पक्ष मे नहीं। फिर भी यह सत्ता का खेल है। खिलाडी आपस मे कौन सा दांव मारते है यह उनकी बात है, हमारी नही। मै युवा वृद्ध महिला पुरूष के विभाजन की अपेक्षा वर्ग समन्वय या समान नागरिक संहिता का पक्षधर हूँ। आप पाठको के और विचार आवेगें तब और विस्तार से चर्चा होगी।

एक बात स्पष्ट है कि अब तक मनमोहन सिंह जी ने भी लोक स्वराज्य की दिशा का कोई संकेत नही दिया है। नरेन्द्र मोदी तो लोक स्वराज्य की नीति के ही विरूद्ध है। नीतिश कुमार से कुछ मामूली उम्मीद है । फिर भी हम इन सबका समर्थन इसलिये कर रहे हैं कि पूरी की पूरी टीम अन्य लोगों के समान घर भरने मे लिप्त नही है। यदि लालू, मुलायम, मायावती, अजीत जोगी जैसों से पिण्ड छूट जायगा तब लोकस्वराज्य की लडाई मे

ज्यादा सुविधा होगी। इसलिये अच्छे लोगो को चुनना हमारी नीति न होकर मजबूरी है। हमारा लक्ष्य तो लोकस्वराज्य ही था, वही है और वही रहेगा। बीच मे परिस्थिति अनुसार रणनीति मे बदलाव अलग बात है।

3 बागीश पाण्डेय बिल्थरा रोड बलियॉ उत्तर प्रदेश

प्रश्न– आपके ज्ञान तत्व मे विनायक सेन के बारे मे जो भी बातें पूर्व मे ही कई बार कही गयी हैं अदालत ने इसके उलट फैसले मे विनायक को रिहा करने के साथ ही यह भी कहा कि जिस तरह गांधीवादी साहित्य रखने से कोई गांधीवादी नही हो सकता उसी तरह नक्सल साहित्य रखने से वह नक्सली नही हो जाता। और सेन पर राष्ट्रद्रोह का मामला नही बनता है। अदालत के इस फैसले का मामले के बाद देश और समाज पर आपके दृष्टि कोण से कैसा असर पडेगा? डा0 सेन की जमानत उचित है या अनुचित? अन्ना हजारे के जन लोकपाल बिल के बारे आप क्या कहेंगे और साथ ही अन्ना हजारे के आमरण अनशन तथा इरोम शर्मिला के आमरण अनशन पर तुलनात्मक प्रतिक्रिया से भी अवगत कराये। क्या हजारे का यह आंदोलन 1942 के आंदोलन या जय प्रकाश नारायण के आंदोलन के समकक्ष था/है।

उत्तर–डा0 विनायक सेन के विषय मे मै लिखता रहा हूँ । मैने पूर्व मे तीन बाते लिखी थीं

(1) विनायक सेन नक्सलवादियों की बुद्धिजीवी सेल का सदस्य था । उसी सेल का सदस्य पीयूष गुहा भी था । ऐसे लोग कभी अपराध नही करते । इनका काम तो सामान्य स्थिति मे नक्सलवाद को वैचारिक समर्थन और विशेष स्थिति मे नक्सलवादियों को गुप्त सहायता तक सीमित रहता है।

(2) विनायक सेन पर राष्ट्रद्रोह जैसा गंभीर आरोप नही लगना चाहिये था। यदि विनायक सेन सरीखे लोगों पर ऐसे कठोर कानून लगाये गये तो वास्तविक नक्सली आतंक करने वाले अपराधियों पर कौन सा कानून लगेगा?

(3) विनायक सेन अपनी सीमा तोडकर पियूष गुहा से गुप्त पत्राचार करता था। सीमा तोडने का प्रोत्साहन बिनायक सेन को छत्तीसगढ सरकार ने ही दिया। उसने उसे बिना तलाशी की बार बार मिलने की छूट दी। इस छूट के जाल मे फंसकर विनायक पकडा गया।

नक्सलवाद के संबंध मे भारत सरकार की पृथक पृथक सोच रही है। (1) दंतेवाडा मे छिहत्तर जवानो के मरने के पूर्व की (2) जवानो के मरने के बात की । जवानो के मरने के पूर्व केन्द्र सरकार और उसके सभी समर्थक नक्सलवाद को खतरनाक मानकर उसके विरूद्ध वैचारिक, प्रशासनिक, तथा कानूनी लडाई लडने के लिये एक जुट थे। उस समय नक्सल समर्थक एन जी ओ लावी वैक फुट पर थी। उस समय वातावरण इस तरह बनाया हुआ था कि विनायक को दोष सिद्धि पूर्व भी जमानत नही मिल रही थी। एकाएक दिग्विजय सिंह ने पूरी धारा को बदलकर केन्द्र सरकार के नक्सलवाद समर्थक एन जी ओ वालो को आगे ला दिया। यह सारा परिवर्तन राहुल गांधी या हो सकता है कि सोनिया जी के इशारे पर हुआ हो। विदेशी शक्तियो का तो दबाव था ही। नक्सलवाद के खिलाफ वैचारिक, प्रशासनिक और कानूनी लडाई लडने वाले बैक फुट पर ला दिये गये। विनायक सेन को केन्द्रीय सलाहकार समिति की एक सेल का सम्मानित सदस्य बना दिया गया। समय समय का फेर है। एक समय था जब विनायक सेन को नक्सलवाद विरोधियो की लावी ने खलनायक प्रमाणित करने मे नैतिकता की सारी सीमाएँ तोड दी थी तो आज समय है कि नक्सल समर्थको की लावी विनायक सेन को नायक प्रमाणित करने मे नैतिकता की सारी सीमाए तोड रही है। न उस समय विनायक उतना बडा आतंकवादी था न आज उस तरह का निर्दोष ।

इस प्रकरण ने प्रमाणित किया है कि न्यायिक प्रक्रिया मे आमूल परिवर्तन होना चाहिये। पश्चिम के लोकतांत्रिक देशो ने जो न्यायिक प्रक्रिया बनाई है वह आदर्श नहीं है। आखिर सर्वोच्च न्यायालयो के न्यायाधीश भी तो समाज के ही अंग है । वे भी तो सामाजिक वातावरण से प्रभावित होते है। स्वतंत्रता के बाद का इतिहास बताता है कि सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिशों की सामाजिक सोच अलग अलग रही है। ये लोग अपने अपने कार्यकाल मे राष्ट्र की मुख्य सामाजिक धारा को प्रभावित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे है । न्यायिक प्रक्रिया मे कुछ ऐसे बदलाव करने की आवश्यकता है कि एक दो व्यक्ति अपने विचारो की छाप न्यायिक प्रक्रिया पर ज्याद न डाल सके । सोचना आवश्यक है कि जिस आरोप मे किसी व्यक्ति का अपराध प्रमाणित होने के पूर्व बाहर घूमना खतरनाक है उसी व्यक्ति का उसी अपराध के सिद्ध होने के बाद उसका खुला घूमना खतरनाक नही है? इन दोनो की परिस्थितियों मे यदि कोई अंतर है तो मै नही जान पाया और यदि एक ही परिस्थिति है तो अवश्य ही सर्वोच्च न्यायाधीशो की व्यक्तिगत सोच से न्यायपालिका के निर्णय पर कम प्रभाव पडने की प्रक्रिया खोजी जानी चाहिये। प्रश्न सिर्फ विनायक सेन तक ही सीमित नही हैं। प्रश्न बहुत वर्षो से उठ रहे है कि सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को यदि करोडों रूपये के लेन देन की कोशिश होती है तो स्वाभाविक है कि किसी व्यक्ति के पास निर्णय को अन्तिम रूप से पलटने की क्षमता भी होती होगी। लोकतंत्र मे ऐसी अन्तिम निरंकुश शक्ति पर अंकुश की प्रक्रिया खोजी जानी चाहिये। ऐसा भी प्रावधान विचारणीय है कि कोई भी अपीली न्यायालय निचले न्यायालय के निर्णय को बदल ही न सके। यदि उसे निर्णय गलत दिखता है तो वह कुछ मार्ग दर्शन के साथ केश को किसी दूसरे उच्च न्यायालय को भेज दे जिसमे आवश्यतानुसार एक से अधिक उच्च न्यायालयो के न्यायाधीश बैठकर निर्णय करे । सर्वोच्च न्यायालय को हाई कोर्ट के निर्णय पलटने का अधिकार ही न हो । यदि कोई अन्य मार्ग भी हो तो उस पर चर्चा हो किन्तु न्यायिक प्रक्रिया का इतना केन्द्रीयकरण घातक है इस पर विचार करने योग्य है।

अन्ना हजारे के अनशन और इरोम शर्मिला के अनशन की कोई तुलना नही है। अन्ना जी का आंदोलन राज्य और समाज के बीच असंतुलन के विरूद्ध था। अन्ना राज्य द्वारा समाज को गुलाम बनाकर रखने के विरूद्ध थे। इरोम शर्मीला का अनशन इसके ठीक विपरीत है। शर्मिला का अनशन सेना के अधिकार घटाने के लिये है । यदि उस विशेष क्षेत्र मे सेना रखने के बाद भी नियंत्रण कठिन हो रहा है तो क्या उस क्षेत्र मे सेना के अधिकार संबंधी मुद्दे पर मुझें टिप्पणी करनी चाहिये? शर्मिला यदि अनशन करते करते मर भी जावे तो उतना प्रभाव संभव नही जितना अन्ना का क्योकि अन्ना जी का अनशन किसी समाधान से जुडा था और शर्मिला का किसी नाटक से । मुझे तो लगता है कि शर्मिला का अनशन किसी वर्ग विशेष का प्रयत्न है। मेरे विचार से इन दोनो अनशनों की तुलना खीर मे मखी डालने के समान माननी चाहिये।

जय प्रकाश के आंदोलन और अन्ना हजारे के आंदोलन मे बहुत फर्क है । जय प्रकाश के आंदोलन के समय तानाशाही थी आज वैसी स्थिति नही । जय प्रकाश राजनीति और समाज के संबंधो के अच्छे ज्ञाता थे । अन्ना वैसे नही है । फिर भी जय प्रकाश जी का आंदोलन कठिन परिस्थितियॉ होने के कारण वैसे परिणाम नही दे सका जैसे अन्ना का आंदोलन। हमे उम्मीद बनाये रखनी चाहिये । मार्ग निकलेगा।

4श्री राधा मोहन पालीवाल, जयपुर राजस्थान,

प्रश्न– ज्ञान तत्व दो सौ बीस पढा। पढने से ज्ञात हुआ कि आपकी रूचि लोकतान्त्रिक राजनीति मे है । परन्तु कहीं कहीं सामाजिक चिन्तन का भी आभास होता है।

तंत्र कोई भी हो वास्तव मे होना चाहिये समाज की भलाई के लिये। हमारी प्रजातांत्रिक प्रणाली मे शासक वर्ग इन तीन नीतियों का ज्ञाता होना चाहिये , धर्म नीति, प्रजा का पुत्रवत पालन, " राजनीति"। मित्र राष्ट्रो के साथ राष्ट्रीय उन्नति के लिये परामर्श तथा शत्रु राष्ट्रो के साथ "कुटनीति" बरती जानी चाहिये। कूट विचारधारा का भले ही सफलता के बाद राज खुल जाये लेकिन पहले शत्रु को आभास भी न हो।

आपने लिखा है कि हमारी लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के तीनो घटक अपना दायित्व नही निभा रहे है और चौथा घटक मीडिया भी असफल है। भतृहरी जी की मान्यता है कि राजनीति तो वैश्या है, सोचिए वैश्या ने किसका घर बसाया है उजाड भले ही दिया हो। हमारे लोकतंत्र का आरंभ ही अंग्रेजों के मानस पुत्रो द्वारा हुआ है, सिद्धान्त था (फूट डालो शासन करो)। समाज के एक घटक को प्रलोभन दिया गया आरक्षण का। वोट के लिये जातिवाद को बढावा दिया गया प्रान्तीय शासन के लिये भाषा विवाद, छोटे छोटे राज्य, कानून का मकडजाल, लुभावने वादे, शासकीय काम–काज अंग्रेजी मे हो जिससे अनपढ जनता समझ ही न सके। जहॉ की जनता गरीबी रेखा से भी नीचे जीवन गुजार रही है उन्हे तिल– तिल कर मारने का यह षणयंत्र है।

अर्थ दो प्रकार के है, पहला प्राकृतिक जिसे वायु, जल और अन्न कहा जाता है। दूसरा अर्थ है विनिमय अर्थ जो स्वीकृत शासकीय अर्थ है। प्रजा का स्वास्थ्य मिलावट की वस्तु खाने से गिर रहा है, भ्रष्टाचार से नैतिक पतन हो रहा है, बलात्कार से चरित्रिक पतन हो रहा है, उपरोक्त बुराइयां यदि समाज मे जड जमा लेंगी तो सर्वनाश ही हो जायेगा। राजनेताओं ने तो पहले ही कालाधन विदेशों मे जमा कर रखा है, भाग जायेगें। मै समझता हूॅ आपके विचारण के लिये ये सब पर्याप्त है।

मेरा परिचय इन शब्दो से आपकी सेवा मे प्रस्तुत कर रहा हूॅ:–

1. जंगल मे भटकता हूॅ मौत सामने खडी, तडपती है जिन्दगी इन्सान तो मिले,स
2. मजहब के दिवानों की लो भीड मिल गई , पूछा पता इन्सान का कहा वो तो मर गया,
3. आवाज आई भीड से यह कौन पागल है, इन्सान पूछता है पकडो भाग न जाये,
4. कसके जो मारी चोट लो कर दिया घायल, भागे तडपता छोड आखिर मर ही जायेगा,

उत्तर– आदर्श लोकतंत्र मे तंत्र लोक का सुरक्षा प्रहरी मात्र होता है। उसका काम समाज की सुरक्षा और न्याय तक ही सीमित है। समाज की भलाई का काम तंत्र तभी कर सकता है जब लोक उसे विशेष रूप से सौपे। लोकतंत्र मे शासक नही होता बल्कि व्यवस्थापक होता है। लोकतंत्र मे तंत्र का काम लोक का पुत्रवत् पालन करना नही होता । ऐसा तो राजाओं के काल मे होता था अथवा अब तक चल रहे दूषित लोकतंत्र मे है। आदर्श लोकतंत्र तो लोक नियंत्रित तंत्र होता है लोक नियुक्त नहीं।

भतृहरि जी ने जो कहा वह मेरा विषय नही । यदि राजनीति को वैश्या मान ले तो वह आवश्यकता पडने पर हमे बलात्कार से बचाती है तथा यदि वह हमे अपने मोह पाश मे जकड ले तो पत्नी से तलाक भी करा सकती है। यह हम पर निर्भर करता है कि हम तंत्र पर हावी है या तंत्र के गुलाम। अंग्रेजो के जाने के बाद भारत मे लोकतंत्र नही आया। आधा अधूरा ही आया । इसलिये तो अंग्रेजो की फूट डालो की नीति यथावत चलती रही।

अब समय आ गया है कि हम लोकतंत्र को विकृत के स्थान पर आदर्श रूप मे खडा करे।